गोस्वामी तुलसीदास

प्रश्न 1. महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का संक्षिप्त जीवन-वृत्त और कृतित्व का उल्लेख कीजिए।

अथवा

अंतःसाक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास का संक्षिप्त जीवन-परिचय दीजिए और उनकी कृतियों और काव्य-सौष्ठव पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

अथवा

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-परिचय पर प्रकाश डालते हुए उनकी साहित्यिक विशेषताओं को लिखिए।

अथवा

तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रकाशित कीजिए।

उत्तर—हिन्दी कवियों में गोस्वामी तुलसी इतने लोकप्रिय, उत्कृष्ट और प्रभावशाली हैं कि इन्हें कवि शिरोमणि कहना किसी प्रकार से अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती है। इस विषय में मूर्धन्य आलोचकों और विचारकों के मंतव्य इस प्रकार से हैं—

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—"भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को।" **डॉ. भगीरथ मिश्र** के शब्दों में, "गोस्वामी जी रस-सिद्ध कवि हैं। लोकमानस का उन्हें यथार्थ ज्ञान है। वे समन्वयवादी थे। वे अपने युग के प्रतिनिधि उतने नहीं, जितने वे युग-निर्माता तथा युग के संस्कारक हैं।" **डॉ. माताप्रसाद गुप्त** लिखते हैं कि—"रामचरितमानस हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृत महाकाव्य है।" **डॉ. रामविलास शर्मा** के अनुसार—"तुलसीदास का मूल संदेश यही है कि मनुष्य बड़ा होता है अपनी मनुष्यता से, न कि जाति और पद से।" **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** तुलसीदास की महत्ता का विवेचन करते हुए कहते हैं कि—"महाकवि तुलसीदास जी का व्यापक प्रभाव भारतीय जनता पर है, उसका कारण उनकी उदारता, उनकी प्रतिभा तथा उनके उद्‌गारों की सत्यता आदि तो है ही साथ ही उसका सबसे बड़ा कारण है, उनका विस्तृत अध्ययन और उनकी सार-गृहिणी प्रवृत्ति।" **डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी** की मान्यता के अनुसार—"तुलसी की पहुँच घर-घर में है या वे व्यापक समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं तो इसका मुख्य कारण यह है कि गृहस्थ जीवन और आत्मनिवेदन इन दोनों अनुभव क्षेत्रों के वे बड़े कवि हैं।"

कबीर और सूर आदि अन्य मध्ययुगीन कवियों की भाँति गोस्वामी तुलसीदास का भी जीवन-वृत्त विवादास्पद रहा है। कारण है कि इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई सुव्यवस्थित वृत्तान्त नहीं दिया है, यद्यपि उन्होंने अपने बाल्यकाल की दयनीय दशा, माता-पिता द्वारा परित्याग आदि घटनाओं के सम्बन्ध में स्व-रचित पदों में निश्चित संकेत किए हैं। इस अंतःसाक्ष्य और बहिर्साक्ष्य सम्बन्धी सामग्री के आधार पर आगे हम उनके जीवन-वृत्तान्त पर प्रकाश डालने का प्रयास कर रहे हैं।

जन्म-तिथि एवं जन्म-स्थान—तुलसीदास के शिष्य बाबा माधव वेणीदास कृत 'मूल गोसाई चरित्र' तथा महात्मा रघुवरदास रचित 'तुलसी-चरित्र' में गोस्वामी तुलसीदास का जन्म सं. 1554 की श्रावण शुक्ला सप्तमी दिया गया है। इनकी निधन तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी सं. 1680 का भी उल्लेख है। उसके अनुसार इनकी आयु 126 वर्ष ठहरती है। जनश्रुति के अनुसार पं. रामगुलाम द्विवेदी ने तुलसी का जन्म सं. 1589 माना है। सर जार्ज ग्रियर्सन व आधुनिक शोधों के आधार पर डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने भी इसे स्वीकार किया है।

गोस्वामी जी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों का भारी मतभेद है। पं. रामगुलाम द्विवेदी और ठा. शिवसिंह सेंगर ने तुलसी का जन्म-स्थान राजापुर बतलाया है। पं. गौरीशंकर द्विवेदी तथा रामनरेश त्रिपाठी ने सोरों को तुलसी का जन्म-स्थान बताया है। बाँदा जिले के गजेटियर का प्रमाण सोरों के पक्ष में

है। तुलसी ने भी शूकर क्षेत्र का उल्लेख किया है, जो कदाचित् सोरों ही है। सोरों को तुलसीदास का जन्म-स्थान मानने वालों के पास काफी पुष्ट प्रमाण हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी सोरों के पक्ष में उपलब्ध प्रमाणों को बहुत महत्वपूर्ण न मानते हुए भी उन्हें विचारणीय स्वीकार करते हैं।

माता-पितादि—जनश्रुति के आधार पर गोस्वामी जी के पिता का नाम आत्माराम था और वे पत्योंजा के दुबे थे—"तुलसी परासर गोत, दुबे पति औजा के।" 'गोसाईं चरित्र' और 'तुलसी चरित्र' के आधार पर आचार्य शुक्ल ने इन्हें सरयूपारीण ब्राह्मण माना है। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें कान्यकुब्ज माना है। अत: यह निर्विवाद है कि ये ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे।

तुलसी की माता का नाम हुलसी था। श्री चन्द्रवली पाण्डेय ने हुलसी को तुलसी की माता न मानकर पत्नी माना है, जो एकदम निराधार है। बाह्यसाक्ष्य, अंतःसाक्ष्य एवं जनश्रुति के आधार पर तुलसी की माता का नाम हुलसी था—

"रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी। तुलसीदास हित हिय हुलसी सी॥"

कवि रहीम के शब्दों में—

"गोद लिये हुलसी फिरें, तुलसी सो सुत होय।"

जनश्रुति के आधार पर इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था। इनके तारक नाम का पुत्र भी हुआ था, जिसकी मृत्यु हो गई थी। तुलसी चरित्र के अनुसार इनके तीन विवाह हुए थे। तीसरा विवाह कंचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ था। इस ग्रंथ की घटनाएँ तुलसी के अन्तःसाध्य में नहीं मिलतीं। जनश्रुति के अनुसार तुलसी अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता-पिता द्वारा त्याग दिए गए थे। पाँच वर्ष तक मुनिया नाम की दासी ने इनका लालन-पालन किया।

गुरु—मुनिया नाम की दासी की मृत्यु के पश्चात् उसी अवस्था में इनके दीक्षा गुरु बाबा नरहरिदास की इन पर दया-दृष्टि हुई। इन्हीं से तुलसी ने शूकर क्षेत्र या सोरों में राम-कथा सुनी थी। शेष सनातन के पास काशी में 16-17 वर्ष रहकर वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण तथा भागवत् आदि का गम्भीर अध्ययन किया और अन्त में काशी में रहने लगे। काशी में तुलसी का मान बढ़ता गया। राजा टोडरमल, रहीम और मानसिंह, तुलसी के अनन्य मित्र थे। दोहावली में वे लिखते हैं—

"घर-घर माँगें टूक पुनि, भूपति पूजें पाँय।
जे तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥"

वृद्धावस्था में उनका शरीर रोगग्रस्त हो गया था। इस बात का उल्लेख उनके शब्दों में—

"पांव पीर, पेट पीर, जाजर सकल शरीर मई है।"

उस समय काशी में महामारी का प्रकोप हुआ और उसके कुछ समय उपरान्त तुलसी का शरीरांत हुआ। स्वर्गवास की तिथि के सम्बन्ध में यह सर्वमान्य है—

"संवत सौलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥"

रचनाएँ—पं. रामगुलाम द्विवेदी व आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रन्थ में तुलसी के छोटे-बड़े बारह ग्रन्थों को ही प्रामाणिकता दी है। नागरी-प्रचारिणी सभा ने इन बारह ग्रन्थों को ही प्रामाणिक मानकर प्रकाशित किया है—दोहावली, कवित्त, रामायण, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय-पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली। इन ग्रन्थों में प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से रामचरितमानस और मुक्तक काव्य की दृष्टि से विनय पत्रिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

भक्तिकाल की सगुण धारा की रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास को हिन्दी कविता का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। तुलसी की कविता भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों दृष्टियों से उत्तम है।

भक्ति-भावना—तुलसीदास एक महान् जीवनदृष्टा कवि हैं। इन्होंने मध्ययुगीन भारत की सम्पूर्ण जन-चेतना को काव्यमय वाणी दी। दार्शनिक विचारधाराओं और सम्प्रदायों के परस्पर विरोध के कारण भारत की लोक-चेतना विषम राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के बोझ से दबी जा रही थी। एक ओर इस्लाम भारतीय संस्कृति का विनाश कर रहा था तो दूसरी ओर भारतीय समाज जाति-पाँति और स्वार्थ के संकीर्ण

घेरों में संकुचित होकर पथभ्रष्ट हो रही थी। गोस्वामी जी ने इन दोनों का मूल कारण खोजा। भारतीय जनमानस में नवीन आशा, नवीन कर्म भावना और नवजीवन का प्रकाश भरकर हिन्दू जाति को विनाश के गर्त में गिरने से बचा लिया।

उन्होंने सगुण, निर्गुण, ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का उचित स्थान निर्धारित करते हुए उनका महत्त्व बताया है। उनकी भक्ति का साधन ज्ञान है और ज्ञान-प्राप्ति के लिए जप, तप, व्रत, अध्ययन और सन्त समागम आदि आवश्यक हैं।

"अगुनहिं सगुनहिं नहिं कुछ भेदा। गावहिं श्रुति पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलग जग जोई। भक्ति प्रेम बस सगुन सो होई॥"

गोस्वामी तुलसीदास ने द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद तथा शुद्धाद्वैतवाद आदि अपने समय के सभी दार्शनिक सिद्धान्तों का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए सब में समन्वय प्रस्तुत किया है। इनका सब मतावलम्बियों से विनम्र निवेदन है कि—

"कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, युगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरहि तीन भ्रम, सो आपुन पहिचानै॥"

तुलसी ने अपने समय के प्रचलित विभिन्न देवी-देवताओं की वन्दना पौराणिक प्रतीकों के रूप में की है और लोक-प्रचलित मंगलकारी ईश्वर के सभी रूपों की वंदना की है।

काव्य-कला—इनकी काव्य-कला के निम्नलिखित तत्त्व दर्शनीय हैं—

(अ) वस्तु-विन्यास—तुलसीकृत रामचरितमानस का कथानक 'अध्यात्म रामायण' तथा 'बाल्मीकि रामायण' से लिया माना जाता है। जहाँ भी तुलसी ने इनमें परिवर्तन आवश्यक समझा है, वहाँ कलात्मकता का पूरा ध्यान रखा है। कथावस्तु के विकास और वर्णन विस्तार में भी तुलसी की असाधारण प्रतिभा और कला के दर्शन होते हैं। रामचरितमानस की सबसे अधिक विशेषता उसका समान विभाजन है। गोस्वामी जी के वस्तु-विन्यास की प्रशंसा में **आचार्य श्यामसुन्दर दास** का कथन है—"इस प्रकार हम देखते हैं कि बाल्मीकि का आधार लेकर तथा मध्यकालीन धर्म-ग्रन्थों के तत्त्वों का समावेश कर साथ ही अपनी उदार बुद्धि और प्रतिभा से अद्‌भुत चमत्कार उत्पन्न कर उन्होंने जिस अनमोल साहित्य का सृजन किया, वह उनकी सारग्रहिणी प्रवृत्ति के साथ ही उनकी प्रगाढ़ मौलिकता का परिचायक है।"

(ब) चरित्र-चित्रण—'मानस' के अनेक पात्र ऐसे हैं, जिनके स्वभाव और मानसिक प्रवृत्तियों की विशेषता गोस्वामी जी ने कई अवसरों पर प्रकट भावों और आचरणों की एकरूपता दिखाकर प्रकट की है। तुलसी ने अपने ग्रन्थों में पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त सर्तकता, कोमलता और उदारता के साथ किया है। रामचरितमानस में भरत जी के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की क्षमता के दर्शन होते हैं।

(स) रस-व्यंजना—मार्मिक स्थलों की कथा के अन्तर्गत मर्मस्पर्शी प्रसंगों को वाणी देने में गोस्वामी तुलसीदास ने उल्लेखनीय प्रतिभा का परिचय दिया। राम का वनवास, राम-भरत मिलाप, लक्ष्मण-शक्ति आदि प्रसंगों का वर्णन उपर्युक्त कथन के प्रमाण हैं। इनमें भारतीय शिष्टता, सभ्यता का मनोहारी चित्र देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए आचार्य के प्रति संकोच, आदर, माता के प्रति व्यवहार, सास के प्रति सेवा, ब्राह्मण और राजा वर्ग का पारस्परिक सम्बन्ध, भील और ऋषि का व्यवहार, सभी प्रकरण सुन्दरता के साथ चित्रित हुए हैं। मर्यादावाद के कारण यद्यपि तुलसी का शृंगार रस अधिक प्रस्फुटित नहीं हुआ; फिर भी इसमें संयोग और वियोग की अच्छी झाँकी मिल जाती है। वन मार्ग पर ग्राम वधुओं द्वारा पूछे जाने पर सीता के उत्तर में शृंगार चेष्टाओं का सुन्दर निरूपण हुआ है—

"बहुरि बदन विधुअंचल ढाँकी पिय तन चितै भौंह करिबाँकी।
खजन मंजु तिरीछे नैननि, निज पति कहेउ तिनहि सिय सैननि॥"

इनका वियोग वर्णन भी मर्यादित है। राम के विरह-उन्माद की ये पंक्तियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

"हे खग मृग हे मधुकर स्रैनी, तुम देखी सीता मृग नैनी।'

लंका कांड और सुन्दर कांड में वीर रस का अच्छा वर्णन हुआ है। लक्ष्मण की दर्पोक्ति दर्शनीय है—

"जो तुम्हार अनुशासन पाऊँ, कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ।"

अनेक प्रसंगों में रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। शान्त रस तो तुलसी काव्य में सर्वत्र ओत-प्रोत है। विनय-पत्रिका का एक उदाहरण दृष्टव्य है—

"मन पछितै हैं अवसर बीते।
दुर्लभ देहि पाहि हरिपद भजु, करम वचन अरु हीते॥"

(द) **अलंकार**—अलंकार भाषा के आभूषण हैं। इनसे ही प्रायः कल्पना का शृंगार होता है। तुलसीदास जी के अलंकार प्रयोग की विशेषता यह है कि उसमें कौतुक के स्थान पर रमणीयता और सहजता है। रससिद्ध कवि तुलसीदास केशव के समान अलंकारों के पीछे मारे-मारे नहीं फिरे, बल्कि अलंकार उनके काव्य में सहज रूप से आए हैं। यही कारण है कि अलंकार भाव, वस्तु और घटना की तीव्रता अनुभव कराने में सहायक सिद्ध हुए हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

"उदित उदय गिरिमंच पर रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरसै लोचन भृंग॥" —(सांगरूपक)

"पीपर पात सरिस मन डोला।" —(उपमा)

"सन्त हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पै कहै जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता, परिदुख दवे सुसंत पुनीता॥" —(व्यतिरेक)

(य) **छन्द**—तुलसी का छन्दों पर अबाध अधिकार था। इन्होंने प्रधान रूप से दोहा-चौपाई छन्दों का प्रयोग किया है। वैसे तुलसी साहित्य में कवित्त, छप्पय आदि अनेक प्रकार के छन्द मिलते हैं। विनय-पत्रिका में राग-रागनियों पर आधारित पद हैं।

(र) **भाषा-शैली और उक्ति-वैचित्र्य**—प्रबन्ध वैचित्र्य के अनुसार शैली वैचित्र्य भी तुलसी की विशेषता है। अपने समय में प्रचलित वीरगाथा नाम की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति, गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया पद्धति, नीति काव्यों की सूक्ति पद्धति, प्रेमाख्यानों की दोहा-चौपाई पद्धति तुलसी की शैली के मौलिक गुण हैं। तुलसी महान् शैली-निर्माता और ज्ञाता थे। तुलसी की उक्तियों में उनका उक्ति वैचित्र्य भी दर्शनीय है। उनकी उक्तियाँ बड़ी ही मार्मिक और प्रभावशालिनी हैं। राम को निरुत्तर कर देने वाली सीता की यह उक्ति दर्शनीय है—

"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू, तुमहि उचित तप मो कहूँ भोगू।"

गोस्वामी जी की उक्तियों में वैचित्र्य के साथ उनकी निश्छलता और अनूठापन अपना महत्त्व रखता है। कौशल्या के चाहने पर भी प्राण न छोड़ सकने से सम्बन्धित एक उक्ति दर्शनीय है—

"लागि रहत मेरे नैयननि आगे राम लषन अरु सीता।"

और उसी से—

"दुख न रहहि रघुपतिहिं विलोके मनु रहैं बिनु देखे।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तुलसी काव्य में कला-पक्ष और भाव-पक्ष अपने अत्यन्त प्रौढ़ रूप में हैं, जो उन्हें एक अप्रतिम, प्रतिभाशाली, क्रान्तदर्शी कवि सिद्ध करते हैं। भाव भाषा-अलंकार, रस पद लालित्य तथा वस्तु ये सभी अपने इतने उच्च स्तर पर हैं कि इस विषय में सम्भवतः कोई अन्य कवि इनकी समानता कर सके। इसी मौलिकता के कारण इनका नाम विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों में लिया जाता है। **डॉ. विजयेन्द्र स्नातक** के शब्दों में—"तुलसी हिन्दी कविता कानन के सबसे बड़े वृक्ष हैं। उस वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं के काव्य कौशल की चारुता और रमणीणता चारों ओर बिखरी पड़ी है। यह सच है कि तुलसी कला के द्वारा उपकृत नहीं हुए, प्रत्युत कला उनसे उपकृत हुई है।"

प्रश्न 2. "तुलसी समन्वयवादी कवि थे।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा

तुलसी के काव्य में व्यंजित समन्वय-भावना पर प्रकाश डालिए।

अथवा

"तुलसी का समस्त काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।" इस उक्ति की समीक्षा कीजिए।

अथवा

"अपने समय की विषम परिस्थितियों के समन्वय की विराट चेष्टा लेकर ही गोस्वामी तुलसीदास लोकनायक हो गए।" इस कथन की प्रामाणिकता सिद्ध कीजिए।

अथवा

"अपने समय के तुलसी महान् समन्वयवादी कवि थे।" इस उक्ति की विवेचना कीजिए।

अथवा

"गोस्वामी तुलसीदास अपने समय के सबसे बड़े लोकनायक थे। बुद्धदेव के पश्चात् भारत के वे ही सबसे बड़े लोकनायक हैं।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—गोस्वामी तुलसी की समन्वयवादी दृष्टि पर विचार करते हुए **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने लिखा है—"गोस्वामी जी की भक्ति-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता, जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से, धर्म तो उनका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतने ही का, जितना ध्यान के लिए चित्त को एकाग्र करने के लिए।"

इस दृष्टिकोण के समान अन्य विचारकों ने भी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी** के विचार दृष्टव्य हैं—"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार-निष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयवादी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसी भी समन्वयवादी थे।"

इसी प्रकार का मत सुप्रसिद्ध इतिहासकार **विंसेंट स्मिथ** ने भी प्रकट करते हुए लिखा है कि—"गोस्वामी जी महात्मा बुद्ध के पश्चात् भारत के सबसे बड़े लोकनायक थे और उनका महत्त्व अपने समकालीन सम्राट अकबर से भी बढ़कर था, क्योंकि अकबर ने लोगों के शरीर पर विजय प्राप्त की थी, जबकि गोस्वामी जी उनके हृदयों पर शासन करते थे।"

इस प्रकार से गोस्वामी तुलसीदास एक महान् समन्वयवादी और लोकनायक के रूप में दिखाई देते हैं। महाकवि ने अपने समय के समाज-राष्ट्र और वातावरण में व्याप्त विभिन्न प्रकार की साम्य और वैषम्य परिस्थितियों को न केवल गम्भीरतापूर्वक देखा ही अपितु उन्हें दूर करने का भी पुरजोर प्रयास किया। इस प्रकार के सफल प्रयास के द्वारा आपने एक सर्वश्रेष्ठ लोकनायकत्व और समन्वयवादिता भूमिका निभाई थी। महाकवि तुलसीदास के इन विशिष्टताओं पर विचार कर रहे हैं—

(क) साहित्यिक समन्वय—महाकवि तुलसीदास ने साहित्य के क्षेत्र में सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। साहित्यिक क्षेत्र में तुलसीदास की समन्वय की दिशा इस प्रकार रही—

1. भाव-क्षेत्र में समन्वय—गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने समय के विभिन्न मत-वादों और भावों को समन्वयवादी स्वरूप प्रदान किया। ये भावनाएँ तुलसी साहित्य में आकर एकरूप और समान हो गईं।

2. राम काव्यधारा और कृष्ण काव्यधारा में समन्वय—गोस्वामी जी ने अपनी प्रतिभा से राम काव्यधारा और कृष्ण काव्यधारा में भी समन्वय स्थापित किया है। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि तुलसीदास स्वयं राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि थे, परन्तु फिर भी कृष्ण जी के चरित्र को लेकर 'कृष्ण गीतावली' की रचना की।

3. भाषा में समन्वय—तुलसी ने अपने काव्य में तत्कालीन प्रचलित ब्रज और अवधी भाषाओं का प्रयोग किया है तथा इस प्रकार साहित्यिक समन्वय स्थापित किया है। साथ ही भाषा को समन्वित रूप देने के लिए संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के शब्दों को अपनाया है। उन्होंने एक ओर संस्कृतनिष्ठ, शुद्ध, परिष्कृत और परिमार्जित भाषा का रूप प्रस्तुत किया तो दूसरी ओर सरल, सुबोध और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया। इस प्रकार तुलसी के साहित्य में भाषा का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है।

4. रचना-शैली में समन्वय—तुलसीदास जी ने भाषा के साथ अपनी शैली में भी समन्वय का परिचय दिया है। उन्होंने विवरणात्मक और संवाद शैली का समन्वय पौराणिक और ऐतिहासिक शैली का समन्वय,

लम्बी-लम्बी समासान्त पदावली युक्त कठिन शैली तथा सरल एवं सुबोध शैली का समन्वय स्थापित किया है। आपके काव्य में प्रबन्ध, मुक्तक और गीत पद्धति का भी सफल समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

5. छन्द विधान में समन्वय—तुलसीदास जी ने छन्द विधान की दृष्टि से भी अपने काव्य में समन्वय ही किया है। तुलसी ने अपने समय में प्रचलित सभी पद्धतियों का अनुसरण किया है। गोस्वामी जी ने 'रामचरित मानस' दोहा-चौपाई पद्धति में, 'विनय-पत्रिका', 'कृष्ण गीतावली' पद-पद्धति में, 'बरवै रामायण' बरवै पद्धति में, 'रामलला नहछू' लोक गीत पद्धति में, 'कवितावली' कवित्त और सवैया पद्धति में लिखकर तत्कालीन समय की सभी पद्धतियों में अपूर्व समन्वय स्थापित किया।

6. अलंकार योजना में समन्वय—तुलसीदास जी ने अलंकार योजना में समन्वय स्थापित करने के लिए अपने समय में प्रचलित अधिकांश अलंकारों का प्रयोग किया है। एक बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने अलंकारों को साधन रूप में अपनाया है, साध्य रूप में नहीं।

7. विविध रसों की योजना—तुलसी के साहित्य में रसों की सुन्दर योजनाएँ प्रस्तुत हुई हैं। यद्यपि तुलसीदास भक्त कवि हैं, फिर भी उनकी भावधारा जीवन के विभिन्न तटों से होकर आगे बढ़ी है। महाकवि तुलसी को मानव-जीवन की विविध दशाओं और भावों की जितनी मजबूत पकड़ प्राप्त हुई, उतनी और किसी कवि को नहीं सम्भव हो सकी है। इससे भी तुलसीदास की समन्वयवादी दृष्टि का पता लगता है।

(ख) धार्मिक समन्वय—तुलसीदास के समय में धर्म के नाम पर बने विभिन्न सम्प्रदाय, जैसे—शैव, वैष्णव, शाक्त आदि परस्पर वैमनस्य की भेदभाव की आग में जलते जा रहे थे। इस प्रकार से हिन्दू धर्म पतनोन्मुख हो रहा था। इसके विरोधी तत्त्वों को दूर करने का महाकवि तुलसीदास ने बहुत अधिक प्रयास किया। तुलसी की धार्मिक समन्वय नीति निम्न प्रकार की रही—

1. सगुण-निर्गुण का समन्वय—सगुण पंथी व निर्गुण पंथियों के विचारों की जो दूरी थी, उसको तुलसी ने मिटाने का प्रयास किया। निर्गुण ब्रह्म की और सगुण ब्रह्म की उपासना करने वालों में पर्याप्त संघर्ष चलता रहता था। उन्होंने स्पष्ट किया कि ईश्वर रूपी लक्ष्य तक पहुँचने वाले दोनों ही मार्गों का महत्त्व एक-सा है, दोनों ही ईश्वर तक पहुँच सकने में समर्थ हैं। दोनों ही भक्तिमार्ग जनसाधारण के लिए सुलभ हैं, जबकि ज्ञान का मार्ग अत्यन्त दुष्कर है—

"सगुनहिं निगुनहिं कछु नहिं भेदा,
उभय हरहिं भव संभव खेदा।"

सगुण-निर्गुण के मतभेद और विवाद को समाप्त करने के लिए महाकवि ने भगवान् राम को सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों में देखा था, जैसे—

"अलख अद्वैत निर्गुण सगुण ब्रह्म सुभिदामि नर भूप रूप।"

2. शैव-वैष्णवों का समन्वय—विष्णु को अपना सर्वस्व मानने वाले भक्तगण 'वैष्णव' कहलाते थे तथा शिव को अपना स्वामी मानने वाले भक्तगण 'शैव' की संज्ञा पाते थे। तुलसी के जीवनकाल में दोनों अनुयायी एक-दूसरे को तुच्छ व घृणित मानते थे तथा एक-दूसरे से द्वेष की भावना रखते थे। तुलसी ने दोनों वर्गों के समर्थकों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने शैवों व वैष्णवों के द्वेष को समाप्त करने के लिए अपने काव्य में अनेक स्थानों पर शिव को राम और राम को शिव का उपासक बताया है। उन्होंने राम के मुख से शिव को कहलवाया है—

"संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही ममदास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महि वास॥"

इसी प्रकार शिव से राम के लिए कहलवाया है—

"सोई मम इष्ट देव रघुवीरा।
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥"

3. सर्वदेव समन्वय—भारतीय धार्मिक संस्कृति की प्रमुख विशेषता है कि यहाँ विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना की जाती है। तुलसीदास ने अपने सभी ग्रन्थों में प्रत्येक देवी-देवता की स्तुति की है और अन्त में सभी से राम की अविचल भक्ति का वरदान माँगा है—

"माँगत तुलसिदास कर जोरे।
बसहिं राम-सिय

4. कर्म, ज्ञान और भक्ति का समन्वय—तुलसी का विचार है कि कर्म, ज्ञान और भक्ति का समन्वय ही जीवन की पूर्णता है। इनमें किसी एक पद्धति को अपनाकर दूसरी का विरोध करना उचित नहीं है। उनका यह भी विचार है कि बिना ज्ञान और भक्ति के सत्कर्मों को करना ही सम्भव नहीं है। उन्होंने ज्ञान और भक्ति में भी कोई भेद नहीं माना। पर भक्ति का मार्ग ज्ञान के मार्ग से सरल अवश्य है—

(अ) "भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरिहिं भव-सभव खेदा॥"

(ब) "ग्यान-पथ कृपान के धारा।
परत खगेस, होई नहिं बारा॥"

इसके साथ ही तुलसी ने ज्ञान की श्रेष्ठता बताने के लिए ज्ञान को भक्ति के लिए आवश्यक माना और ज्ञान-मार्ग की कठिनाइयों के परिहार के लिए, भक्ति को अमोघ अस्त्र बताया। उन्होंने भक्ति को ज्ञान और वैराग्य से युक्त घोषित किया जैसे—

"कहहिं भगति भगवंत कै संयुक्त ज्ञान विराग।"

(ग) दार्शनिक विचारों में समन्वय—तुलसी ने समयाप्रचलित विविध दार्शनिक विचारों में भी समन्वय स्थापित किया। वहाँ तत्कालीन समय में प्रचलित विविध दार्शनिक विचारों में भी समन्वय स्थापित किया। तत्कालीन समय में द्वैतवाद, अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद दार्शनिक विचारधाराएँ प्रचलित थीं। तुलसी ने न ही किसी एक विचारधारा का समर्थन किया और न ही किसी विचारधारा का खंडन किया। उन्होंने सिर्फ अपने स्वरूप को पहचानने पर बल दिया। जैसे—

"कोऊ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल किर माने।
तुलसीदास परिहरैं तीनि भ्रम सो आपन पहिचाने॥"

इसी प्रकार तुलसी के काव्य में तीनों सिद्धान्तों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने किसी भी सिद्धान्त के चक्कर में न पड़कर मानव कल्याण पर विशेष ध्यान दिया।

उन्होंने ईश्वर, जीवन, माया के प्रति विचार व्यक्त किए—

"मोह निशा सब सोच निहारा,
देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा।"

तुलसी ने मोह के रूप को व्यक्त किया है। जैसे—

"मोह न नारि नारि के रूपा,
पन्नगारि यह रीति अनूपा।"

इसी प्रकार ईश्वर व जीव के सम्बन्धों को स्पष्ट किया है। जैसे—

"ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन अमल सहज सुखराशी।
सो माया बस भयेउ गोसाई,
बँध्यो कीट मरकट की नाई॥"

(घ) नर एवं नारायण का समन्वय—तुलसी ने अपने आराध्य राम को नर और नारायण अर्थात् मानव और ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। इस तरह तुलसी ने नर और नारायण का सम्बन्ध स्थापित किया है। उदाहरणार्थ—

"बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु करम करै विधि नाना॥"

(ङ) सामाजिक क्षेत्र में समन्वय—तुलसी के युग में समाज अस्त-व्यस्त था। तुलसी ने सच्चे लोकनायक की भाँति अपने समय के समाज पर दृष्टिपात किया। समाज के विशृंखल और जर्जरित रूप को देखकर उनकी आत्मा कराह उठी। उन्होंने देखा कि जाति-पाँति का भेद-भाव चरमसीमा पर पहुँच चुका है। उच्च जाति के लोग छोटी जाति के लोगों से अमानवीय व्यवहार करते हैं। समाज के इस विकृत रूप को दूर

करने के लिए तथा परस्पर प्रेम की भावना बनाने के लिए तुलसी ने अपने भगवान् रूप को निषाद मल्लाह का सखा बनाया। शबरी के झूठे बेर खिलाए और तुच्छ वानर-भालू व विभीषण राक्षस से प्रेमपूर्वक भेंट कराई है। इसके अलावा छुआछूत के भेद-भाव को दूर करने के लिए गुरु वशिष्ठ को निषाद से मिलाया। इस प्रकार तुलसी ने मानवतावादी भावना का स्वर बुलन्द किया तथा निम्न जाति के भेद-भाव को दूर किया।

सामाजिक समन्वय के लिए तुलसीदास ने विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य किया है—

(i) संत और असंत का समन्वय—समाज में सदैव से दो प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। एक तो साधु प्रकृति के पुरुष होते हैं, जो दूसरों की भलाई में ही अपना जीवन लगा देते हैं। दूसरे असाधु प्रकृति के पुरुष होते हैं, जो दूसरों को कष्ट देकर भी अपना मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं। तुलसीदास ने संत और असंत दोनों का विस्तृत विवेचन अपने मानस में किया है और दोनों की ही वंदना की है, यह उनकी ही विशेषता है।

(ii) व्यक्ति और समाज का समन्वय—तुलसीदास ने रामचरितमानस में एक ओर तो स्वांतः सुखाय की बात कही है, परन्तु दूसरी ओर सभी के कल्याण पर बल दिया है। व्यक्ति समाज की इकाई है अतः उसका दायित्व है कि वह अपनी उदात्तवृत्तियों, सात्विक भावनाओं और निष्काम कर्त्तव्य-परायणता के माध्यम से समाज का उन्नयन करे। इस प्रकार तुलसी ने व्यक्ति और समाज में समन्वय स्थापित करके धर्म की सर्वतोन्मुखी रक्षा की है।

(iii) व्यक्ति और परिवार का समन्वय—परिवार और व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। इसलिए परस्पर समन्वय ही दोनों के विकास की आधारशिला है। एक भी कड़ी के अलग हो जाने पर परिवार की जंजीर टूट जायेगी। 'रामचरितमानस' में दशरथ-परिवार के सभी सदस्य कर्त्तव्य-परायणता के प्रतीक हैं। इसके विपरीत रावण के परिवार के सदस्य समन्वय के अभाव में टूटकर बिखर गए।

(iv) ब्राह्मण और शूद्र का समन्वय—समाज में सदैव से ब्राह्मण उत्तम माना जाता रहा है और शूद्र निम्नतम। तुलसीदास ने भक्ति के माध्यम से दोनों को समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया है। सूर्यवंशीय भरत और ब्राह्मण शिरोमणि वशिष्ठ ने प्रेम से विभोर होकर नीच-कुल में जन्म लेने वाले निषाद और केवट आदि को अपने गले से लगा लिया। ऐसा उदाहरण कहाँ मिलेगा—

"प्रेम पुलक केवट कहि नामू। कीन्ह दूर तें दंड प्रनामू।
राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत सनेह समेटा॥"

(v) राजा और प्रजा का समन्वय—तुलसी के समय में राजा और प्रजा दोनों ही कर्त्तव्य-विमुख थे। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार सभी लोग पाखंडी, व्यभिचारी और धर्म-विमुख हो गये थे। ऐसी स्थिति में तुलसीदास की समन्वयवादी दृष्टि ने आदर्श राम-राज्य का विधान किया, जिसमें राजा और प्रजा परस्पर प्रेम से रहकर एक-दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करें। तुलसी के राम अपने राज्य में प्रजा की सम्मति के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते थे—

"सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहऊँ न कछु मनसा उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
जो अनीति कछु भाषा भाई। तो मोई बरजहु भय बिसराई॥"

(छ) राजनैतिक क्षेत्र में समन्वय—तुलसीदास के युग में राजनीतिक जीवन की बड़ी दयनीय दशा थी। राजा और प्रजा का जो अन्तर मुसलमानी सल्तनत में आरम्भ हुआ था, उसका अन्त तुलसी के साहित्य से हुआ था। राजा अपने भोगविलास के सामने प्रजा की चिन्ता नहीं करते थे। ऐसे शासकों की तुलसी ने आलोचना की और बताया कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुःख पाती है वह राजा निश्चय ही नरक का भागी बनता है—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥"

दूसरी ओर प्रजा का आदर्श रूप रखा—

"दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहुँहिं व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति

तुलसी ने अपने 'रामचरितमानस' में राजा और प्रजा में समन्वय स्थापित कराने के लिए दोनों के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

"सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होई।"

अर्थात् राजा को मुख के समान और प्रजा को कर, पद एवं नेत्रों के समान हितैषी होना चाहिए। इस प्रकार जैसे शरीर के गुण, कर आदि विविध अवयव समन्वय के द्वारा ही कार्य में रत होते हैं, उसी प्रकार राजा और प्रजा को भी समन्वय से काम करना चाहिए। राजा का अस्तित्व प्रजा के द्वारा है और प्रजा का कल्याण राजा के द्वारा ही सम्भव है। राजा ही उचित समय न्याय के लिए दण्ड देता है—

"दण्ड जाति न कर भेद जहँ, नर्तक नित्य समाज।
जितहुँ मनहि अस सुनिए, जग रामचन्द्र के राज॥"

राजा समाज रूपी परिवार का सदस्य होता है इसलिए तुलसीदास ने कहा—

"जौं अनीति कछु भावौं भाई,
तो मोहिं बरजेहु भय बिसराई।"

(ज) सांस्कृतिक क्षेत्र में समन्वय—महाकवि तुलसीदास ने विभिन्न संस्कृतियों का अपनी रचनाओं में अभूतपूर्व समन्वय स्थापित किया है। लोक-जीवन को व्यक्त करने वाली परम्पराएँ और मान्यताएँ 'रामचरितमानस' में विशद् रूप से प्रस्तुत हुई हैं। भारतीय जीवन में व्यक्ति के जीवन को समुन्नत बनाने के लिए सोलह संस्कारों का विधान शास्त्रीय है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में प्रधानतः विवाह और उससे सम्बन्धित शास्त्रीय और लौकिक परम्पराओं का वर्णन किया है। गौण रूप से जाति-कर्म, संस्कार, नामकरण, चूड़ा कर्म और अन्तिम संस्कार से सम्बन्धित जनरीतियों का विवेचन हुआ है।

निष्कर्ष—अन्ततः हम उपर्युक्त विवरणों के आधार पर निष्कर्ष निकाल रहे हैं कि तुलसीदास अपने समय के सबसे बड़े समन्वयवादी कवि रहे हैं। इस दृष्टिकोण से वे एक सच्चे लोकनायक कहे जाते हैं। हम **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** के मत उद्धृत कर रहे हैं—"उनका सारा काव्य समन्वय, गृहस्थ व वैराग्य का समन्वय, कला और तत्त्व ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चाण्डाल का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय, रामचरितमानस शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है।"

प्रश्न 3. 'तुलसीदास की भक्ति-पद्धति' शीर्षक पर एक लेख लिखिए।

अथवा

'तुलसीदास की भक्ति-भावना' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

"महाकवि तुलसीदास जी राम के अनन्य भक्त थे।" इस कथन के समर्थन में अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—महाकवि तुलसीदास का न केवल भारतीय वाङ्मय में सर्वोच्च स्थान है, अपितु विश्व साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार हैं। आप हिन्दी सगुण भक्ति-काव्यधारा के शिरोमणि कवि हैं। इस तथ्य को पुष्टि करते हुए समालोचक कवि का यह कहना अत्यन्त उपयुक्त ही लगता है—

"सूर ससि तुलसी रवि, उडगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश॥"

"तत्त्व-तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची-खुची कबीरा कही, और कही सब झूठी॥"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-पद्धति पर प्रकाश डालते हुए अपनी लोक-प्रतिष्ठित समीक्षा-कृति 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है—"गोस्वामी जी की भक्ति-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर यह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से, धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं।"

भक्ति का स्वरूप—तुलसीदास की भक्ति का स्वरूप अत्यन्त विविध है। उसमें शिष्टता, आदर्श और नैतिकता को पूरा स्थान दिया गया है। यद्यपि तुलसी के इष्ट परब्रह्म परमेश्वर दशरथ नंदन श्रीराम हैं। तुलसी इन्हें ही अपना जीवन धन मानते हैं। इसके अतिरिक्त वे गुरु सहित शिव, पार्वती, गणेश, ब्रह्म, शेष, शारदा आदि न जाने कितने देव-देवियों की भक्ति-उपासना करते नहीं अघाते हैं। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति के स्वरूप का अभिप्राय केवल रामभक्ति का स्वरूप नहीं है, अपितु विविध भक्ति के स्वरूपों से है। इस दृष्टिकोण से हम गोस्वामी तुलसीदास की विविध भक्तिधारा पर प्रकाश डालना अधिक समीचीन समझते हैं। तुलसीदास की भक्ति का स्वरूप इस प्रकार से है—

1. रामभक्ति का स्वरूप—गोस्वामी तुलसीदास राम के अनन्य भक्त हैं। इसी घोषणा को वे बार-बार करते हुए सुने जाते हैं कि—

"रामहिं केवल मोहि पियारा। जान लेहुँ जो जाननिहारा॥"

तुलसीदास जी राम के प्रति आश्वस्त हैं, विश्वस्त हैं और दृढ़-प्रतिज्ञ हैं। राम के बिना उनका जीवन सम्भव नहीं है। वे तो राम के ऐसे भक्त हैं, जैसे चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र की बूँद के लिए तरसते हुए उससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर पाता है—

"एक भरोसो, एक बल, एक आत्म-विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥"

किसी भी देवी-देवता की उपासना-भक्ति करने के बावजूद भी तुलसीदास जी अन्ततः अपने इष्ट प्रभु श्रीराम से अपनी हार्दिक इच्छा को रखते हुए कहते हैं—

"माँगत तुलसीदास कर जोरे।
बसहिं रामसियमानस मोरे॥"

2. गुरु भक्ति का स्वरूप—रामभक्त होने के साथ-ही-साथ गोस्वामी तुलसीदास जी की भक्ति-भावना सद्गुरु की ओर प्रवाहित हुई है। अन्य भक्तिकालीन कवियों के समान गोस्वामी तुलसीदास ने भी गुरु भक्ति में अत्यन्त सौष्ठव और उत्तम भावधारा को प्रस्तुत किया है। अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना रामचरितमानस के आरम्भ में गोस्वामी जी ने नित्यबोधमय प्रदाता शंकर स्वरूप सद्गुरु की वन्दना करते हुए कहा है कि इस शंकर स्वरूप सद्गुरु की ऐसी अनन्त महिमा होती है कि आश्रित रहने वाला वक्र चन्द्र भी, सर्वत्र वन्दनीय और पूज्य होता है—

"वन्दे वोधमयं नित्यं गुरु शडकररूपिणम्।
यमाश्रितो वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥"

यह सद्गुरु अनेक दिव्य विशेषताओं से विभूषित है, जैसे—इसके चरण कमलवत हैं, जो विविध प्रकार सुरुचिपूर्ण सुवास से युक्त हैं, वह अमृत का मूल रूप है, जिसे प्राप्त करने से सभी सांसारिक रोग-भव विनष्ट हो जाते हैं। यह शंभुतन होने के कारण विमल विभूति से युक्त है। इसके श्री नख तो मणियों के अनन्त प्रकाश के समान जगमगाते रहते हैं, जिसके स्मरणमात्र से हृदय में दिव्यदृष्टि का उदय होने लगता है—

"वन्दउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥
अभियमूरियम चूरन चारु। समन सकल भव रूज परिवारू॥
सुकृति संभु तन विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन-मन मंजु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुन गन बस करनी॥
श्री गुरुपद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥"

3. प्रमुख देवी-देवताओं की भक्ति—गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' और 'विनय-पत्रिका' में प्रायः सभी प्रमुख देवी-देवताओं की स्तुति की है। इनमें शिव, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, पार्वती, सरस्वती आदि देवी-देवताओं की स्तुति बारंबार की है। सभी की महिमा और कृपा को अनन्त बतलाते हुए गोस्वामी जी ने किसी प्रकार से विरोधाभास प्रस्तुत नहीं किया है। गोस्वामी जी ने सर्वप्रमुख देवता शिव को भी अपने इष्टदेव राम के समान ही कह करके किसी प्रकार के भी विरोधाभास को समाप्त करने का प्रयास किया है। इससे

उत्पन्न हुए वैषम्य भाव समन्वय रूप में सामने आने लगे। राम के मुख से भी स्वामी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहलवाया—

"शिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर सपनेहुँ मोंहिं न पावा॥"
"संकर प्रिय मम द्रोही, शिव प्रिय मम दास।
सो नर मरऊँ कलप भरि, घोर नरक महुँ बास॥"

4. सेव्य सेवक भाव की भक्ति—तुलसीदास की भक्ति-भावना नवधा-भक्ति है। फिर भी मुख्य रूप से आपकी भक्ति सेव्य सेवक भाव की ही भक्ति रही है। वे अपने इष्टदेव राम को स्वामी और स्वयं को सेवक स्वीकारते हैं। एक सच्चे सेवक के समान वे अपने स्वामी की भक्ति और स्तुति करते हैं। वे अपनी समस्त भावनाओं और जीवनधारा को अपने स्वामी श्रीराम के प्रति समर्पित कर देते हैं। वे अपने इष्टदेव के शील, सौन्दर्य और उदारता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहते हैं। उनके स्वामी श्रीराम तो दयालु हैं, दानी हैं और पापियों के उद्धारकर्त्ता हैं। उनके राम तो इस प्रकार के कृपालु हैं कि उन्होंने उसे बहुत ही अमूल्यवान मानव शरीर जो प्रदान किया है। इस कृपा का यशगान करोड़ों मुखों से भी सम्भव नहीं है—

"तू दयालु, दीनहौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी॥"

अथवा

"ऐसो को उदार जग माहीं।
विनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोऊ नाहीं॥"

अथवा

"हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हौं।
साधन धाम विवुध दुरलभ तनु मोहिं कृपा करि दीन्हौं।
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के एक-एक उपकार॥"

5. समन्वयपूर्ण भक्ति-भावना—गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी भक्तिभावना में अद्‌भुत समन्वय का स्वरूप प्रस्तुत किया है। यह आपकी भक्ति-भावना की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है। तत्कालीन प्रचलित सगुण-निर्गुण परस्पर विरोधी मतों को अपने समन्वित रूप देने के प्रयास में लिखा—

"सगुन निर्गुणहिं नहिं कछु भेद।"

6. भक्ति और ज्ञान का समन्वय—विज्ञान-दीपक-निरूपण तथा ज्ञान और भक्ति का तुलनात्मक विवेचन कर यद्यपि गोस्वामी जी ने ज्ञान एवं भक्ति दोनों की ही प्रतिष्ठा की है। गरुड़ को समझाते हुए काकभुशुंडि जी कह रहे हैं—

"ज्ञानहिं भगतिहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संशय खेदा॥"

जिस शक्ति की अनन्तता पर भक्त केवल चकित होकर रह जायेगा। ज्ञानी उसके मूल तक जाने के लिए उत्सुक होगा, ईश्वर ज्ञान स्वरूप है। अतः ज्ञान के प्रति यह औत्सुक्य भी भक्ति के समान एक भाव ही है या यों कहिए भक्ति का ही एक रूप है पर एक ऐसे कठिन क्षेत्र की ओर ले जाने वाला जिसमें कोई बिरला ही ठहर सकता है—

"ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होई नहिं पारा॥"

7. भक्ति एवं कर्म का समन्वय—तुलसी की भक्ति मनुष्य को संसार से विमुख करके अकर्मण्य बनाने वाली नहीं है, अपितु सत्कर्म की प्रबल प्रेरणा देने वाली है। उनका सिद्धान्त यह है कि राम के समान आचरण करो, रावण के सदृश कुकर्म नहीं।

उनका विचार यही है कि योग के नियम आदि के पालन न करने से भक्त कर्त्तव्य-विमुख होकर भटक सकता है, अतः उन्होंने योग का भक्ति के साथ समन्वय किया। वैराग्य के बिना भी भक्त भोग की आसक्ति में फँस सकता है, अतः उन्होंने भक्ति के साथ वैराग्य को भी स्थान दिया है।

8. भक्ति का लोक पक्ष—तुलसी की भक्ति अन्तर्मुखी नहीं है। उनकी भक्ति में तो लोक कल्याण की भी उतनी ही उदात्त भावना है, जितनी व्यक्तिगत अन्तःसाधना की। शील के उत्कर्ष को प्रेम और भक्ति का आलम्बन स्थिर कर तुलसी ने सदाचार और भक्ति को अन्योन्याश्रित करके दिखा दिया है। तुलसी के समक्ष ऐसे राम का जीवन था, जो मर्यादाशील थे, शक्ति एवं सौन्दर्य के अवतार थे, जिन्होंने तड़पती आत्माओं की समस्याओं को सुलझाने के लिए और उनके भार को हल्का करने के लिए ही अवतार धारण किया था। तुलसी के राम जहाँ अनन्य शक्तिवान् तथा अनन्त सौन्दर्यशील हैं, वहाँ अनन्त शीलवान् भी हैं। तुलसी के राम इतने उदार एवं भक्तवत्सल हैं कि जब भक्त पूर्ण आत्मसमर्पण कर देता है, तो वे उसका उद्धार करने में तनिक भी विलम्ब नहीं करते।

"ऐसो को उदार जग माँहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाही॥"

तुलसी ने भक्ति की अपनी एक विशिष्ट व्याख्या की है। वह उसी भक्ति को स्वीकार करते हैं, जिसमें मन राम की ओर वैसे ही स्वाभाविक रीति से लग जाए, जैसे वह सांसारिकता में लगा हुआ है। भक्त का स्वभाव सन्तों जैसा हो, उसे दूसरे की प्रसन्नता देखकर सुख होता हो और कष्ट देखकर दुःख। सदाचार के बिना भक्ति दम्भ है। इस प्रकार तुलसी ने अपने भक्ति-मार्गों को दुर्गुणों से बचाकर उसका एक ऐसा आदर्श उपस्थित किया है, जिससे लोक-परलोक दोनों का ही कल्याण हो सके—

"कबहुँक हौ यही रहनि रहौंगो ?
श्री रघुनाथ-कृपाल कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ?
जथालाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ?
पर हित निरत निरंतर, मग क्रम बचन नेम निबहौंगो ?
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ?
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो ?
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति लहौंगो॥"

9. निष्काम भावना—सच्ची भक्ति में विनिमय का भाव नहीं होता। उसकी बड़ी शर्त है—निष्कामता। भक्ति के बदले में उत्तम गति मिलेगी इस भावना को लेकर भक्ति नहीं हो सकती। भक्त के लिए भक्त का आनन्द ही उसका फल है। तुलसी की भक्ति इसी प्रकार की थी। वह राम को इसलिए भजते थे कि राम उन्हें अच्छे लगते हैं। उनकी भक्ति का कारण भी यही है—

"जौ जगदीश तौ अति भलौ, जो महीस तौं भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम-चरण-अनुराग॥"

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी ने भक्तिरस का वह प्रवाह प्रवाहित किया है, जिसमें अवगाहन कर समग्रलोक का आभ्यंकर कलुष दूर हुआ। रामभक्ति के इस समन्वित रूप को जनता ने सरलता, सुबोधता और सुगमता से अपना लिया, जिससे देश की द्वेषमयी अग्नि शान्त हुई। हम अपने निष्कर्ष की सच्चाई की प्रतिष्ठा में **डॉ. उदयभानु सिंह** द्वारा लिखे गए निबन्ध 'रामचरितमानस' का ज्ञान और भक्ति-दर्शन के इस अंश को प्रस्तुत कर रहे हैं—

"तुलसी के समय में भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदाय किसी-न-किसी रूप में जीवित थे। परन्तु वह मुख्यतया वेदान्त का युग था। वेदान्त के क्षेत्र में सभी वैष्णव आचार्य शंकर के मायावाद और ब्रह्मवाद (केवलाद्वैतवाद) के विरोधी थे। द्वैतवाद और अद्वैतवाद के खण्डन-मण्डन पर भी अनेक पुस्तकें लिखी गईं। दूसरी ओर भारतीय मनीषियों ने सांख्य योगस्य वेदान्त के, ज्ञान और भक्ति शैव एवं वैष्णव के समन्वय का प्रयास किया। इस दृष्टि से विज्ञानभिक्षु नारायणतीर्थ और मधुसूदन सरस्वती के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दार्शनिक कवि तुलसी ने भी अपने 'रामचरितमानस' में इन विभिन्न विचारधाराओं का कहीं इतिहास ज्ञान की कथात्मक पद्धति से और कहीं स्तम्भों आदि का मुक्त शैली में समन्वय स्थापित किया।"